E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 3, Issue- 5 | May 2026

गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत समाधि' में तृतीय लिंग विमर्श

हिमांशी यादव
शोधार्थी, महिला महाविद्यालय पी॰ जी॰ कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश

शोध सार

साहित्य समाज का मार्गदर्शक है, वह समाज के दर्पण के समान उसके सभी पहलुओं को सम्मुख रखता है। समाज प्रायः जिन पक्षों अथवा दोषों को अनदेखा कर देता है, साहित्यकार उन्हीं पहलुओं को अपनी लेखनी से समाज के सामने लाकर उनपर चिंतन-मनन करने को विवश कर देता है। समाज का ऐसा ही अनदेखा किया गया और उपेक्षित-शोषित वर्ग है- तृतीय लिंग वर्ग। तृतीय लिंगी वर्ग के संघर्षों को केंद्र में रखते हुए लिखे गए आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक प्रसिद्ध रचना रही है गीतांजलि श्री का उपन्यास 'रेत समाधि'। यह उपन्यास तृतीय लिंग के यथार्थ का मार्मिक चित्रण करता है। प्रस्तुत शोध पत्र इस कृति में चित्रित तृतीय लिंगी पात्र के अध्ययन के माध्यम से समाज के तृतीय लिंगी वर्ग के सम्मुख आने वाली सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं, उपेक्षा और अस्वीकृति का अध्ययन करता है।

बीज शब्द- तृतीय लिंग, आजीविका, समाज, अधिकार, सम्मान।

प्रस्तावना-

एक आदर्श समाज वह माना जाता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को गरिमा और सम्मान के साथ अपने मूल्यों के अनुसार जीने के लिए स्वतंत्र होता है, रोटी, कपड़ा और मकान जैसी आधारभूत आवश्यकताओं के साथ शिक्षा, जीविका और समाज में अपने लिए स्थान के लिए उसे संघर्ष नहीं करना पड़ता, किन्तु मानवीय समाज की यह विडम्बना रही है कि इसके लंबे इतिहास में शायद ही कोई ऐसा युग रहा हो जब धर्म, जाति, वर्ग, लिंग आदि के आधार पर इसमें मनुष्यमात्र को बाँटा न गया हो। मानव अपने अस्तित्व मात्र के लिए समाज में गरिमापूर्ण जीवन व्यतीत करने का अधिकारी है किन्तु प्रायः उसके नियंत्रण से बाहर के कारकों के कारण उससे उसके मूलभूत अधिकार छीन लिए जाते हैं, अपने अधिकारों और सम्मान को पाने के लिए भी उसे बड़ा संघर्ष करना पड़ता है, मानव समाज का ऐसा ही उपेक्षित वर्ग रहा है – तृतीय लिंगी वर्ग।

तृतीय लिंग की ऐतिहासिक स्थिति –

तृतीय लिंगी वर्ग को समाज में अनेक नामों से जाना जाता रहा है, संस्कृत भाषा में इनके लिए नपुंसक, क्लीव, तृतीय प्रकृति, हिन्दी में किन्नर, द्विलिंगी, उर्दू में हिजड़ा, ख्वाजासरा, ज़नख़ा, खोजा, पंजाबी में खुसरो और अङ्ग्रेज़ी भाषा में थर्ड जेंडर, ट्रांसजेंडर आदि शब्दों का प्रचलन है। इसके अतिरिक्त भारत के विभिन्न प्रदेशों में इन्हें अर्धनारीश्वर, शिखंडी, बृहन्नला, छक्का, मामू जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता है, "ज़्यादातर तृतीय लिंगियों को अपमानजनक शब्द न चाहते हुए भी स्वीकारना पड़ता है। यह हमारे समाज के कुछ प्रतिशत लोगों की अज्ञानता है जिसके फलस्वरूप कोई भी व्यक्ति जो स्त्री या पुरुष के पैमाने पर सटीक नहीं बैठ पाता तो उसे हिजड़ा, छक्का, मामू जैसी

Published: 25 May 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i5.45756
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

गालियों से नवाजा जाता है। इस विचारधारा से दूर पूरे भारतवर्ष में तृतीय लिंगियों के लिए हिजड़ा, किन्नर एवं मंगलामुखी शब्द का ही ज़्यादातर प्रयोग होता है।"[1]

तृतीय लिंगी पुरातन काल से ही हमारे समाज और संस्कृति का हिस्सा रहे हैं, हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इनका उल्लेख और विशिष्ट स्थान रहा है, यथा- मनु-स्मृति, पाणिनी कृत 'अष्टाध्यायी', चौथी शताब्दी के ग्रंथ 'कामसूत्र' के साथ-साथ ब्राह्मण पुराण, मत्स्यपुराण, वायुपुराण, रामायण तथा महाभारत आदि में किन्नरों या तृतीय लिंग के विषय में विविध प्रकार से वर्णन मिलता है, वहीं पौराणिक काल से ही शिव के एक रूप अर्धनारीश्वर का भी विशिष्ट महत्व माना जाता रहा है जिसका आधा शरीर पुरुष तथा आधा नारी के रूप में चित्रित होता है, सम्पूर्ण स्त्री या पुरुष न होते हुए भी उन्हें श्रद्धा और सम्मान के भाव से देखा जाता है। ऐसे में यह विचार का विषय है कि वह समाज जिसमें तृतीय लिंगियों के प्रति आदरदृष्टि की प्राचीन परंपरा रही थी वह आज उन्हें अपने मध्य स्थान देने में भी संकोच करता है, तृतीय लिंगी बच्चे के जन्मते ही उसे परिवार से दूर करने, अनाथालयों में छोड़ देने और यहाँ तक कि उनकी हत्या तक कर देने की घटनाएँ सामान्य हो गयी, "शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होने के बावजूद भी 'थर्ड जेंडर' बच्चों के साथ अमानवीय व्यवहार होता है। कहने को तो हम 'वसुधैव कुटुंबकम्' जैसी आदर्श बातों में विश्वास रखते हैं किन्तु वास्तविक जीवन में हम अपनी ही संतान को समाज से विस्थापित करने पर तुले रहते हैं।"[2] मात्र इस कारण कि वे समाज के निर्धारित स्त्री व पुरुष के मानदंडों से इतर अस्तित्व वाले हैं, उनका जीवन, इच्छाएँ, स्वप्न, सम्मानपूर्वक जीने, शिक्षा पाने, जीविकोपार्जन करने जैसे अधिकार भी समाज द्वारा निरर्थक ठहरा दिये जाते हैं। यदि इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत में इन्हें सामाजिक स्वीकार्यता प्राप्त थी, मध्यकालीन भारत में भी इनका समाज में सम्मान और स्थान था, किन्तु ब्रिटिश शासन के दौरान इन्हें आपराधिक जनजाति श्रेणी में रख दिया गया जिससे इनकी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पहचान छिन गयी। यह खेद का विषय है कि उपनिवेशकालीन मनोवृत्ति ने हमारे समाज में इतनी गहरी पैठ बना ली कि स्वतन्त्रता के इतने वर्षों बाद भी यह समुदाय उसके परिणामों को भोगने को बाध्य है।

साहित्य और तृतीय लिंग समुदाय-

तृतीय लिंगी वर्ग की व्यथा को जानने, उसे नयी पीढ़ी के सम्मुख रख कर उनके प्रति आदर, सहानुभूति और समानता के दृष्टिकोण का विकास करने में साहित्य की महती भूमिका रही है। नीरजा माधव के 'यमदीप', महेंद्र भीष्म के 'किन्नर कथा' और 'मैं पायल', प्रदीप सौरभ के 'तीसरी ताली', चित्रा मुद्गल के 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा', भगवंत अनमोल के 'जिंदगी 50-50' आदि उपन्यासों की कड़ी में ही गीतांजलि श्री का उपन्यास 'रेत समाधि' भी तृतीय लिंगी वर्ग के जीवन की वेदना और समाज की उनके प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टि का उद्घाटन करता है।

'रेत समाधि' उपन्यास में तृतीय लिंग विमर्श-

रेत समाधि उपन्यास की एक प्रमुख पात्र है- रोजी बुआ, वह कथा नायिका अस्सी वर्षीया चंद्रप्रभा देवी के काफी निकट थी, "रोजी, हिजड़ा, बरसों से आती थी माँ से मिलने, बहन जी, बहन जी करती। होली की बख्शीश, ईद की ईदी, बच्चों के जन्मदिन जश्नदिन पे आती, कभी कुछ लेती, कभी कुछ ले आती, और सबने देखा था, माँ के संग बाहर, लॉन में, पीढ़े पर बैठ कर बातें करते और चाय के संग दालमोठ खाते।"[3] रोजी के माँ जी से वर्षों पुराने आत्मीय संबंध थे किन्तु उसका घर में आना-जाना मात्र घर के बाकी सदस्यों को असहज सा कर देता था, बेटे के घर पर रहते हुए तो माँ जी उससे दहलीज के बाहर ही मिला करती थीं, उसे घर के भीतर आने तक की अनुमति न थी। जब वे आधुनिक विचारों और आधुनिक जीवन शैली वाली पत्रकार बेटी के यहाँ रहने लगी तो भी रोजी का आना उनकी बेटी को प्रारम्भ में खटका, "बाद में वह सोचती रही गार्ड ने फोन किया होगा, क्या कहा होगा, कौन मिलने आई है, कि आया है, आने दें या क्या"[4]। बेटी के घर में ठहरी माँ जी की देख-रेख के लिए रोजी अक्सर आने लगी,

वह सहेली की तरह माँ जी की निस्वार्थ देखभाल करती, "जीवन की नयी करवट। उई-उई करती माँ और संभालती लताड़ती रोजी।"[5] रोजी के साथ से माँ जी में जीवन के प्रति नया उत्साह भरने लगा था।

रोजी अपनी जीविका कैसे कमाती थी, यह किसी को स्पष्ट पता न था, "पर बुआ नाचती गाती नहीं थी, बल्कि दिखावे का कोई तमाशा पेशा नहीं लगता उसका। स्वर कुछ भारी पर सो भी जैसा बहुत सी औरतों का होता है। माँ के साथ तहज़ीब से बैठती। माँ बात करतीं, नेग देतीं, नाश्ता भी और इतना ही बेटी को याद है।"[6] एक दिन बेटी राह चलते रोजी को देख उसके पीछे-पीछे जाती है और तब उसे यह भेद पता चलता है कि रोजी पुरुष का वेश धारण कर टेलर मास्टर रजा बन जाता है, वह रजा के रूप में उसके साथ ऐसा व्यवहार करता है जैसे वे दोनों पूरी तरह अजनबी हों, बेटी यह देख चकित रह जाती है। "रोजी बुआ! बेटी बेसाख्ता दरवाजे से झाँक पड़ी। देह मुड़ी। अजनबी आँखें। अरे ये तो मर्द है! मरदाना पंजाबी सूट में। मैंने ध्यान दिया? वही कद बुत, वही चेहरा, पर आँखें पाषाण, होंठ सिये। जेब से सिगरेट पैकेट झाँकता हुआ।"[7] समाज में तृतीय लिंगी व्यक्ति को जीविका के लिए कहीं अधिक संघर्ष करना पड़ता है, भले ही संविधान उन्हें जीविका के लिए अन्य वर्गों के समान अवसर प्रदान करता है, पर सामाजिक स्वीकृति उन्हें शायद ही मिलती हो, यही कारण है कि रोजी सम्मान के साथ जीने और जीविका कमाने के लिए समाज में स्वीकृत पुरुष भेष को अपनाती है।

रोजी इन परिस्थितियों में भी एक उत्कट जिजीविषा से भरे व्यक्ति के रूप में पाठकों के सामने आती है। वह व्यंग भरी आवाज में कहती है, "हमारी गिनती न मुस्लमीन किरस्तान में न यहूदी पारसी हिन्दू में न आदमी औरत में, हमारा नाम न लेना, हमें पहचानना नहीं। हमें असल क्या, तसव्वुर से ही गायब रखना चाहते हैं। तो हम तो कहीं भी घुस लें।"[8]

समाज किस तरह उन्हें हाशिये पर रखता है और अपने बीच उनके लिए कभी कोई स्थान बनाने का प्रयास तक नहीं करता, इस बात की व्यथा रोजी के इन शब्दों से उजागर होती है-"हमारी किसे पड़ी, रोजी अम्मा से कहती गयी। हम तो उनके बाजार में भी नहीं कि हमे लुभाने के इश्तेहार बनायें, हमारे लिए दुकान खोलें और नफा कमाएं। लोभी पंसारी को भी हमारी ग्राहिकी नहीं चाहिए, तो सोच लो हम कितने निकृष्ट अदृश्य परिशिष्ट। न मेरे लिए फिल्म, न साहित्य, न कला, न कपड़े। जो आप उतार दें, उस उतरन में हम उतार लें। अपनी कहीं गिनती नहीं। झील में बाजी डाल आओ तो किसी को पता नहीं चलेगा कि एक कम है।"[9] आज के बाजारवादी युग में जहाँ मनुष्य लाभ के अवसर के लिए जन्म से लेकर मृत्यु तक के हर अवसर के लिए बाजार खड़ा कर चुका है, उसमें भी तृतीय वर्ग के लिए कोई स्थान नहीं है, समाज के उन्हें इस प्रकार नकारने के पीछे उसकी पूर्वाग्रही सोच है जो समझती है कि वे बाजार में उपभोक्ता के रूप में भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते।

रोजी की कही बात आगे सच साबित होती हैं, एक दिन वह अचानक लापता हो जाती है, माँ जी के हठ करने पर बेटी और दूसरे परिवारीजन उसे ढूँढने का प्रयास करते हैं, जब माँ जी उसकी गुमशुदगी की रिपोर्ट लिखाने थाने जाती हैं तो दारोगा सिर्फ इस कारण रिपोर्ट लिखने में टालमटोल करता है कि वह तृतीय लिंगी वर्ग की थी, वह हिकारत भरी आवाज में कहता है- "आप जानती हैं न वो क्या था, किसके चक्करों में पड़ रही हैं, नाचते गाते भीख माँगते और न जाने क्या क्या पेशा करते, सारे में फिरते हैं ये लोग, शादी, ब्याह चोरी चकारी और जो मैं आपसे कह नहीं पाऊँगा, सब करते है, हम तो जानते हैं, कोड़े लगाते हैं पकड़ के, फिर छोड़ देते हैं, कोई अपना थाना थोड़े गंदा करना है और कहाँ से उनके लिए अलग सेल बनवाएँ।"[10] समाज का एक बड़ा तबका किस दृष्टि से तृतीय लिंगी मनुष्यों को देखता है इसका प्रतिनिधित्व दारोगा करता है, वह रोजी की पहचान या उसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में सुने बिना ही यह निर्णय कर लेता है कि वह कैसा जीवन जीती थी, किस प्रकार के कार्य करती थी और यहाँ तक कि वह इस लायक भी नहीं है कि उसके लापता होने और उसकी हत्या की जाँच भी की जाए।

मृत्यु के बाद रोजी की इच्छा के अनुसार उसके शरीर को मेडिकल रिसर्च के लिए अस्पताल को दान कर दिया जाता है। बचपन में ही विभाजन के दंश को झेलने वाली बच्ची रोजी जिसे अकेला पाकर समाज के दुराचारी लोगों ने उसके साथ अमानवीय कृत्य किए, जो रोजी ईमानदारी से दो वक़्त की रोटी कमाने के लिए पुरुष वेश अपनाती है, जिसका एक भले घर में आना-जाना भी समाज की दृष्टि में अनुचित था और जिसको कानून भी न्याय का अधिकारी नहीं मानता, उसे मृत्यु के बाद समाज से इतनी ही सहानुभूति मिल पाती है कि समाचारपत्र उसे एक नेक हिजड़ा बताते हैं।

तृतीय लिंग समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, संवैधानिक स्थिति-

रोजी का पात्र समाज की संवेदनहीनता और उपेक्षा का शिकार रहे सम्पूर्ण तृतीय लिंग समुदाय की वेदना को हमारे सम्मुख रखता है। उसका जीवन समाज द्वारा बहिष्कृत उन लोगों की पीड़ा को सामने लाता है जिन्हें केवल उनकी लैंगिक पहचान के कारण सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अधिकार से वंचित कर दिया जाता है। तृतीयलिंगी व्यक्ति भी अन्य मनुष्यों के समान ही संवेदनाएँ रखते हैं, सामाजिक सम्बन्धों की आवश्यकता अनुभव करते हैं, उनके भी अन्य व्यक्तियों के समान शिक्षा, आजीविका, प्रेम इत्यादि से जुड़े स्वप्न एवं आकांक्षाएँ होती हैं किन्तु समाज की अस्वीकृति एवं पूर्वाग्रहों के कारण वे इन सभी से वंचित ही रह जाते हैं।

यद्यपि कानून अब इस समुदाय को 'तृतीय लिंग' के रूप में इनकी विशिष्ट पहचान को स्वीकार करता है, "भारत के सर्वोच्च न्यायालय में राष्ट्रीय कानूनी सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ और अन्य (रिट याचिका (सिविल) संख्या 400 2012 (नालसा)) के मामले में न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन और ए. के. सीकरी ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया। इस फैसले के अनुसार मंगलामुखियों को तीसरे लिंग की मान्यता दी गयी और फैसले में कहा गया कि तृतीय लिंग के रूप में मंगलामुखियों की मान्यता एक सामाजिक मुद्दा नहीं है, बल्कि एक मानवाधिकार का मुद्दा है।"[11] किन्तु सामाजिक स्वीकार्यता के अभाव के चलते आज भी अनेक तृतीय लिंगी व्यक्तियों को अपनी पहचान छुपानी पड़ती है, सम्मान और रोजगार के लिए रोजी को रजा बनना पड़ता है। इतना ही नहीं, यह वर्ग कानून के द्वारा संरक्षण का अधिकारी होने के बाद भी सामाजिक उपेक्षा के साथ ही कानूनी और प्रशासनिक संवेदनहीनता का आज भी शिकार होता है, वास्तव में जब तक समाज अपने सभी पूर्वाग्रहों और इनके प्रति अपने अमानवीय दृष्टिकोणों का त्याग कर इन्हें मानवोचित गरिमा के साथ अपना नहीं लेता तब तक ऐसे सभी प्रयास अपर्याप्त ही रहेंगे। सामाजिक स्वीकार्यता से ही तृतीय लिंगी समुदाय के लिए सच्चे अर्थों में सामाजिक, आर्थिक समानता के अवसर प्राप्त होंगे।

मनुष्य चाहे किसी भी राष्ट्र, धर्म, जाति, वर्ग या लिंग से संबंध रखता हो, समाज के बिना उसके जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, जीवन के हर मोड़ पर व्यक्ति मानवीय सम्बन्धों की आवश्यकता और अनिवार्यता अनुभव करता है, किन्तु यही तृतीय लिंगी वर्ग के जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना का कारण बनती है, रोजी समाज द्वारा हाशिये की ओर ढकेला गया चरित्र होते हुए भी माँ जी के प्रति अपने लगाव को नहीं छोड़ पाती है, उनके परिवार द्वारा सदैव संदेह की दृष्टि से देखे जाने पर भी वह उनकी निस्वार्थ सेवा करती है। रोजी का पात्र दर्शाता है कि संवेदना के स्तर पर तृतीय लिंगी वर्ग तथा अन्य मनुष्यों में कोई अंतर नहीं होता है। सिर्फ लैंगिक विषमता के चलते उन्हें सामान्य मानवीय संवेदनाओं और सम्बन्धों के लिए अपात्र ठहराना किसी भी प्रकार से उचित नहीं है।

निष्कर्ष-

रोजी की करुण कथा तृतीय लिंगी समाज का मार्मिक सत्य है। आज के आधुनिक दौर में यद्यपि नयी पीढ़ी पुराने पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों को तोड़कर समाज के नए सुखद और समन्वयकारी भविष्य की आशा बंधा रही है, फिर भी तृतीय लिंगी वर्ग के लिए सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आदि सभी पक्षों में समानता और सम्मान का

अधिकार दिलाने और समाज में उनके प्रति एक स्वीकार्यतापूर्ण सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिए अभी बहुत प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। आज के साहित्यकार इस क्षेत्र में अपने दायित्व को भली-भांति समझ रहे हैं और तृतीय लिंगी वर्ग के संघर्षों और स्वप्नों की कथाएँ पूरी निष्ठा के साथ पाठकों के सम्मुख रख रहे हैं। गीतांजलि श्री का यह उपन्यास तृतीय लिंग समुदाय की अस्मिता, सामाजिक उपेक्षा और मानवीय संघर्ष को केंद्र में रखकर हिन्दी साहित्य में एक महत्वपूर्ण विमर्श प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची-

[1] अविनाश,डॉ॰ पुरोबी, हिन्दी कथा साहित्य में तृतीय लिंगी विमर्श, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2025, पृष्ठ-35

[2] बिश्नोई, डॉ॰ मिलन, 21वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में किन्नर विमर्श, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2025, पृष्ठ-46

[3]श्री, गीतांजलि, रेत समाधि, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2018, पृष्ठ- 88

[4] वही, पृष्ठ- 150

[5] वही, पृष्ठ- 152

[6] वही, पृष्ठ- 155

[7] वही, पृष्ठ- 220

[8] वही, पृष्ठ- 238

[9] वही, पृष्ठ- 239

[10] वही, पृष्ठ- 248

[11] अविनाश, डॉ॰ पुरोबी, हिन्दी कथा साहित्य में तृतीय लिंगी विमर्श, विकास प्रकाशन, कानपुर, 2025, पृष्ठ- 73